

रक्त की रेखा

(वीर-काव्य)

लेखक

शील चतुर्वेदी



रक्त की रेखा

(वीर-काव्य)

लेखक

शील चतुर्वेदी



रक्त की रेखा

(वीर-काव्य)

लेखक

शील चतुर्वेदी



प्रकाशक
साहित्य-निकुंज
१६ शिवचरन लाल रोड
प्रयाग

मूल्य २।।।)

मुद्रक
पं० जयराम भार्गव
युनिवर्सल प्रेस
प्रयाग

Do you want the fragrance of the full-blown
rose? If so, you must accept the
thorns. Do you want the sweetness
of the smiling dawn? If so, you
must live through the dark hours of
the night. Do you want the joy
of liberty and the solace of freedom?
If so, you must pay the price.
And the price of liberty is suffering
and sacrifice.

Bombay
31. 12. 31

Srinivas Chandra Bose

राष्ट्र-कवि गुप्त जी की कामना

प्रिय शील जी,

आप अपनी कवित्व शक्ति का ऐसा ही सदुपयोग करते रहें यही मेरी कामना है ।

‘जय हिन्द’ के माथे पर हमारे कवि की लेखनी अपनी हार्दिक ‘रक्त-रेखा’ का टीका काढ़ने जाय तो कौन उसका अभिनन्दन न करेगा ? मैं तो उसका बन्दन करता हूँ ।

चिरगाँव
नानापञ्चमी
२००३

}

मैथिली शरण गुप्त

‘रक्त की रेखा’ का एक मात्र उद्देश्य है, अमर सेनानी श्री सुभाषचन्द्र बोस के सम्बन्ध में फैली हुई राजनैतिक भ्रांत धारणाओं का उन्मूलन ।

×

×

×

नेता जी के पवित्र संकल्प-सूर्य पर लोगों ने जो काले बादलों की चादर डालने की चेष्टा की है, कवि ने कलम की नोंक से उस अपवाद को विदीर्ण कर दिया है । घटना की वास्तविकता, इतिहास के तथ्य और उद्देश्य की पवित्रता का दिग्दर्शन अपने पाठकों के सम्मुख लाना ही कवि का लक्ष्य है । उसे अपनी अनुभूति और तर्क में विश्वास है—जब तक मानव में जीवन है, मानव जीवन में काव्य-कला, देखें फिर कौन मिटाता है, जग से सच्चा इतिहास भला । इसी अडिग विश्वास के साथ कवि ने अपने आराध्य नायक श्री नेता जी के शौर्य, पराक्रम, साहस तथा आदर्श का चमत्कारपूर्ण वर्णन अपनी शैली में किया है ।

×

×

×

ग्रन्थ का विषय स्तुत्य है । भाषा प्रवाहपूर्ण और मँजी हुई, शैली ओजपूर्ण, वीर-रौद्र अद्भुत रसों का सुन्दर निरूपण, हर घटनास्थल का मार्मिक और लोमहर्षक चित्रण, प्रत्येक छंद कवित्वपूर्ण और ग्रन्थ में कलात्मक अभिव्यञ्जना की भाँकी है । सम्पूर्ण दृष्टि से ‘रक्त की रेखा’ हिन्दी का सफल ‘प्रबन्ध-काव्य’ है, तथा युग-साहित्य सृजन का अभिनन्दनीय प्रयास है ।

×

×

×

ग्रन्थ की इति कवि के इन शब्दों में हुई है :

यह रेखा अभी अधूरी है, कम हो न शहीदों का विक्रम,
बलिदान इसे पूरा कर दे, तब पुनः चलेगी रुकी कलम ।

इससे तरुण साहित्यकारों को बल मिलेगा । गीतकारों को जीवन और मृत्यु का सुन्दर राग, चित्रकारों की नूलिका के लिये रक्त का लाल रङ्ग, देश पर बलिदान होने वालों के लिये आग की हल्की चिनगारी और राष्ट्र के सैनिकों का सिंहनाद का स्वर ।

भाँसी

सुभाष-दिवस

२३-१-४८

रामसेवक रावत ‘प्रवासी’

समाजवादी नेता का संदेश

‘रक्त की रेखा’ की हस्तलिपि देखी। काव्य का पारखी नहीं हूँ कि उस दृष्टि से कुछ कहूँ। राष्ट्र-कवि गुप्त जी ने रेखा के संबंध में लिखा, इतने से ही मान लेता हूँ कि यह काव्य उन्हें पसंद आया।

आज़ाद हिन्द फौज और नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस की गाथायें भारत के— इतिहास में अमर हो चुकी हैं। उन्हें काव्य-रूप में भी अमरता प्रदान करना किसी नये व्यास का ही काम हो सकता है। शील चतुर्वेदी जी का प्रस्तुत प्रयास सराहनीय है, और मुझे आशा है कि नव-भारत की इन वीर-गाथाओं को देश के वच्चे-वच्चे की जुवान पर रख देने में वह सफल हो सकेंगे।

बम्बई. ११-५-४६

जयप्रकाश नारायण

कवि और कृति

आजाद हिन्द फौज के प्रणेता नेता जी श्री सुभाष चन्द्र बोस जिस समय मांडले जेल में थे उन्होंने ६ अक्टूबर सन् १९२५ को एक महत्वपूर्ण पत्र अपने मित्र दिलीप कुमार राय को लिखा था। उस पत्र का एक अंश निम्नलिखित है—

“बन्धुवर, आप इस बात के लिये दीर्घ-निश्वास न लें, खेद प्रगट न करें, कि देश की इस संकटपूर्ण स्थिति में आपको अपना समय संगीत या गान-विद्या में नष्ट करना पड़ता है। वलिकि आप तो समस्त भारत के ग्राम-ग्राम में गानों की बाढ़-सी ला दें। हमारे ग्रामीण समाज में से जीवन की जो सहज स्वाभाविक आनन्दधारा नष्ट हो चुकी है, उसे पुनर्जीवित कर दें। जिसके व्यक्तित्व में कोई संगीत नहीं, जिसका हृदय संगीत से स्पन्दित नहीं होता, वह अपनी जिन्दगी में कोई महान् कार्य न कर सकेगा। कार्लायल ने तो यहाँ तक कहा था कि जिसके रक्त में संगीत व्याप्त नहीं, वह कोई भी दुष्कर्म करने की क्षमता रखता है! यह बात कहाँ तक सत्य है, यह तो मैं नहीं कह सकता पर इतना अवश्य कहूँगा कि जो मनुष्य संगीत से प्रभावित नहीं होता, वह, क्या तो विचार-क्षेत्र में और क्या कार्य-क्षेत्र में, बहुत ऊँचा नहीं उठ सकता। हमारी यह आकांक्षा है कि हम अपने रक्त की बूँद-बूँद में आनन्द की निरन्तर अनुभूति करें। यही नहीं, हमें साहित्य, संगीत तथा कला को इस भूमि के गरीब से गरीब प्राणियों तक पहुँचाना है……”

अभी उस दिन प्रातःकाल के समय जब स्वाध्याय के लिये हमने श्री दिलीप-कुमार राय की अंग्रेजी पुस्तक *The Subhash I Know** (मेरे परिचित सुभाष) को खोला तो उसमें नेता जी के उपर्युक्त वाक्य को पढ़कर हार्दिक हर्ष हुआ। सौभाग्य से बन्धुवर शील जी उसी दिन हमारे यहाँ पधारे थे और हमने वह पत्र उन्हें भी सुनाया। शील जी ने उसे बहुत ही पसन्द किया, उनकी तबियत फड़क गई और उसकी प्रतिलिपि उन्होंने अपने संग्रह के लिये ले ली। हमें भी उस समय ऐसा मालूम

*‘सुभाष, जैसा कि मैं उन्हें जानता था’ अंग्रेजी पुस्तक नालन्द प्रकाशन-गृह, पोस्ट बाक्स १३५३, बम्बई से, सवा पाँच रुपये में मिल सकती है।

पड़ा कि मानों उपर्युक्त वाक्य खासतौर पर शील जी तथा उनके समानशील व्यक्तियों के लिये ही लिखा गया हो। महापुरुषों के वचन कभी ग्रासे नहीं होते। वे तो सदा ताजे बने रहते हैं और उनमें भिन्न-भिन्न रुचियों तथा आदर्शों के व्यक्तियों को अपने जीवन के लिये स्फूर्ति मिल सकती है। वे आकाश में व्याप्त हो जाते हैं और ध्यान के रेडियो सैट से सम्बन्ध मिलाने पर किसी भी साधक की हृत्तन्त्री के तारों को तुरन्त भक्त करने लगते हैं। शीलजी कोई गायनाचार्य नहीं पर उनके हृदय में संगीत है। वे अनेक सुन्दर गीतों के रचयिता हैं और मधुर कंठ तथा प्राणमय गीतों से वे सहस्रों हिन्दी-भाषा-भाषियों का मनोरंजन तथा उत्साह-वर्द्धन कर चुके हैं। कुरुडेश्वर के निर्मल आकाश के नीचे जब उन्होंने अपना निम्नलिखित गीत हमें सुनाया तो हम उनके स्वर-माधुर्य से मंत्रमुग्ध बनकर विचार-सागर में मग्न हो गये।

एक तारा आसमाँ में झिलमिलाया रात भर,

चाँदनी ने गोद में उसको खिलाया रात भर।

जिससे मिलने की तमन्ना थी न मिल पाया था वो

यों तो अपने दिल का इकतारा मिलाया रात भर।

रात की खामोश घड़ियों में हुआ बेचैन दिल,

क्या बताऊँ मैं मुझे किसने सताया रात भर।

शत्रु के पिछले वक्त में कुछ टूट कर तारे गिरे,

टूटने से मैंने दिल को था बचाया रात भर।

ओ सितारे ओस के मिस तू सहर में रो रहा,

जब कि मैंने चश्म से दरिया बहाया रात भर।

संगीत-शास्त्र का हमें त्रितुल्य ज्ञान नहीं, उसके विषय में हम सर्वथा अनभिज्ञ हैं, पर संगीतमय रचनाओं का हमारे मन पर यह प्रभाव पड़ता है कि हमारा ध्यान संगीत के विषय से हट कर अपने प्रिय उद्देश्य पर केन्द्रित हो जाता है। शील जी अपना गीत सुना रहे थे और हम यह सोच रहे थे कि आगामी वसन्त ऋतु में कुन्देलखंड जनपद के लिए क्या साहित्यिक प्रोग्राम बनाया जाय। सुन्दर मनोहारी कविताओं का आनन्द हम अकेले ही नहीं भोगना चाहते, वरन् उसे अपने जनपद के प्रत्येक ग्राम और नगर के साहित्य-प्रेमी व्यक्ति के लिए सुलभ बना देना चाहते

हैं। इस आयोजना में कवि लोग ही बहुत-कुछ सहायक हो सकते हैं। शीलजी को तो हम मधुर गीतों के मिशनरी गायक के रूप में देखना चाहते हैं, जो अपने इस जनपद के ग्राम-ग्राम में काव्य की धारा प्रवाहित कर दें। पर यहाँ पर एक बात हमें ईमानदारी के साथ स्वीकार करनी पड़ेगी—

कवि-सम्मेलनों के प्रति हमारे हृदय में कुछ विरक्ति-सी रही है और अब भी उनके बारे में हम कुछ-कुछ सशंक हैं। पहले तो हमारी यह आशंका इतनी सीमा तक पहुँच गई थी कि हम कवि-दंगलों को सांस्कृतिक दृष्टि से विघातक मानने लगे थे और उनके वन्द कर देने के पक्ष में हो गये थे। कहाँ कविता ! कहाँ दंगल की वकवास !! पर जब हमें बन्धुवर रंगजी तथा भाई शीलजी के सम्पर्क में आने का अवसर मिला तो हमारे दृष्टिकोण का वह संकोच जाता रहा। और हम इस नतीजे पर पहुँचे कि कवि-सम्मेलनों तथा उनमें भाग लेने वाले कवियों का हिन्दी जगत् में एक निश्चित स्थान है और जनता के सांस्कृतिक जीवन को प्रेरणा देने के कार्य में उनका सदुपयोग हो सकता है। दंगली कवि प्राचीन काल के चारणों के सुसंस्कृत अवतार बनाये जा सकते हैं और वे साधारण जनता को ज्ञान तथा शक्ति भी प्रदान कर सकते हैं। पर इतनी आशंका हमें अब भी है कि यदि कवि-सम्मेलनों का उचित नियंत्रण न किया गया तो वे जनता के सांस्कृतिक धरातल को नीचे भी गिरा सकते हैं।

कवि-सम्मेलन के कवियों के लिए जनता की रुचि का खयाल करके नीचे की ओर देखना स्वाभाविक है और दृष्टिकोण की इस अधोगति के कारण ऊँची उड़ान उनके लिये कठिन से कठिनतर बनती जायगी। कविवर वच्चन जी तथा दिनकर जी प्रभृति दो-चार कवियों को छोड़कर कवि-दंगलों के कवियों में ऐसे बहुत ही कम निकलेंगे जो अपनी प्रतिभा तथा लोक-प्रियता दोनों क्षेत्रों में (अखाड़ों में तथा साहित्य-क्षेत्र में भी) समान रूप से कायम रख सकें हों। हर्ष की बात है कि शील जी उन अपवादों की सूची में अपना शुभ नाम लिखाने के लिये प्रयत्नशील हैं। शील जी की स्वच्छन्द प्रकृति के पीछे एक दृढ़ भावना है और उसे उन्होंने निम्नलिखित गीत में बड़ी खूबी से प्रकट किया है—

मेरी भावुकता से जग का कुछ तो हित हो ही जायेगा ।
 राग जगाता फिरता हूँ मैं अभी यहाँ की गली-गली में,
 और खोजता फिरता हूँ मकरंद यहाँ की कली-कली में,
 मेरे मृदु गुंजन से कुछ तो मधु संचित हो ही जायेगा ।
 व्यर्थ नहीं पूजा करता हूँ मैं अपनी एकाकिन सुधि को,
 व्यर्थ नहीं लहराया करता अपने अंतर के अंबुधि को,
 धीरे-धीरे सरल सुधाकर प्रतिबिम्बित हो ही जायेगा ।
 व्यर्थ नहीं देखा करता हूँ नभ के नक्षत्रों की पाँतें,
 व्यर्थ नहीं करता रहता हूँ अंबर के तारों से बातें,
 धीरे-धीरे नव-भावों का भानु उदित हो ही जायेगा ।
 व्यर्थ नहीं सहता फिरता हूँ जीवन में निस्सीम व्यथायें,
 व्यर्थ नहीं कहता फिरता हूँ जगसे पीड़ा-भरी कथायें,
 धीरे-धीरे दुख भी सुख में परिवर्तित हो ही जायेगा ।

शीलजी वस्तुतः सुन्दर गानों के रचयिता और गायक हैं। उनकी वास्तविक प्रतिभा का स्रोत वहीं पर है, इसलिये उनका यह कर्तव्य था कि वे अपनी पुस्तक 'कवि के स्वर' (गीत-संग्रह) को सर्वप्रथम प्रकाशित करते। तत्पश्चात् उन्हें अपनी द्वितीय पुस्तक 'विदुला-संजय' नामक खंड-काव्य छपानी चाहिये थी, पर ऐसा न करके उन्होंने 'रक्त की रेखा' को सबसे पहले छपाया है। चूँकि इस ग्रन्थ के द्वारा उन्हें लोक-प्रियता मिली है, इसलिये कृतज्ञता-स्वरूप वे इसे ही पहले जनता के सम्मुख ला रहे हैं। विवरणात्मक काव्य-ग्रन्थों में समान रूप से चमत्कार बनाये रखना अत्यन्त ही कठिन कार्य है और उनके कुछ अंश ही प्रभावोत्पादक बन सकते हैं। हर्ष की बात है कि शीलजी का कवित्व कई स्थलों पर भली-भाँति प्रकट हो सका है। जो स्थल हमें खासतौर पर पसन्द आये वे ये हैं—

१—बहादुरशाह के मकदरे पर

२—तुलादान

३—रक्त-दान

युवक सुभाषचन्द्र बोस के हिमालय-प्रयाण के कई पद्य बड़े ओजमय हैं और तुलादान में सूर्य और वन-घटा का वार्तालाप सुन्दर बन पड़ा है।

‘समरभूमि’ का अन्तिम अंश तो काफी अच्छा है, पर जहाँ शील जी ने जीवित व्यक्तियों की प्रशंसा की है वहाँ वे खतरनाक रास्ते पर भटक गये हैं। इसी प्रकार पुस्तक के प्रारम्भ में भी उन्होंने आलोचकों पर जो व्यंग किये हैं वे भी हमें अनावश्यक जँचे। आलोचकों की चिन्ता हम क्यों करें? “They say, what they say, let them say” (वे कहते हैं, क्या कहते हैं? कहने दो) ये तीन वाक्य प्रत्येक स्वाभिमानी लेखक को अपने स्वाध्याय-भवन में टाँग देने चाहिये।

यह बात भी चिन्तनीय है कि इस काव्य का जन्म प्रतिक्रिया के रूप में हुआ है। ‘लोक-युद्ध’ में प्रकाशित लेखों तथा कविताओं से शीलजी के देश-भक्त हृदय को जो धक्का लगा उसी के परिणाम-स्वरूप उन्होंने यह ग्रन्थ लिखा है। उनकी सद्भावना के हम क्रायल हैं, उनके विचारों से सहमत भी हैं, पर प्रतिक्रिया को हम अज्ञातखुद कोई अच्छी चीज नहीं मानते, क्योंकि वह भी हमारी परमुखापेक्षा की सूचक है।

इन त्रुटियों के बावजूद इस पुस्तक के अनेक अंश काव्यमय बन पड़े हैं। कई उक्तियाँ बड़ी चुटीली हैं—

“सोना एकत्रित करने की धुन में सब सोना भूले थे।”

“प्राची में सब से प्रथम उषा थी स्वर्ण थाल लेकर आई”

उपसंहार को हम इस पुस्तक का सर्वोत्तम प्रकरण मानते हैं और आश्चर्य की बात यह है कि वह पुस्तक में पीछे से जोड़ा गया है। उसके सभी पद्य प्रभावोत्पादक हैं।

जो कोटि-कोटि कंटों के स्वर कहता है कौन उन्हें मृत है।

यह कवि विश्वास दिलाता है, नेता सुभाष जी जीवित हैं ॥

जिस दिन नीचे होगी न मही, ऊपर होगा आकाश नहीं।

उस दिन होगा विश्वास मुझे, इस जग में कहीं सुभाष नहीं ॥

कवियों की कविताओं में यह खूबी होती है कि अपनी रुचि के अनुसार उनके अनेक स्थल भिन्न-भिन्न पाठकों को पसन्द आते हैं। हमें दो पद्य खासतौर पर जँचे—

“सिंहासन पर अस्थियाँ रहें
शासक अब कोई व्यक्ति न हो।
मानव पर शासन करने को
मानव की बरबर शक्ति न हो।”

यहाँ शील जी का कवि एक अराजकवादी के रूप में प्रकट हुआ है। इससे स्पष्ट है कि भावी सामाजिक व्यवस्था के विषय में वे उदासीन नहीं, बल्कि सजग हैं।

हमारी रूचि का दूसरा पद्य इस पुस्तक का अन्तिम पद्य है।

“यह रेखा अभी अधूरी है, कम हो न शहीदों का विक्रम।

बलिदान इसे पूरा कर दे, तब पुनः चलेगी रुकी कलम।”

ऐसे अवसर पर जब कि स्वाधीनता संग्राम के अनेक योद्धाओं ने अपने लिये

“पद पैसन की लूट है, लूटी जाइ सो लूट।

अन्तकाल पछतायगा, प्राण जाँयगे छूट ॥”

यह मोटो (आदर्श-वाक्य) बना लिया है और चारों ओर के वातावरण में साधना, त्याग तथा तप के बजाय पद, प्रतिष्ठा और भोग का ही प्राधान्य हो गया है, किसी स्वाभिमानी कवि की हृत्तंत्री के तार कैसे भङ्कृत हो सकते हैं ? इसलिये शीलजी की कलम का रुक जाना सर्वथा स्वाभाविक है। पर शीलजी को हम विश्वास दिला देना चाहते हैं कि देश-वासियों की यह मनोवृत्ति क्षणिक ही होगी, क्योंकि भारतीय संस्कृति भोगमूलक नहीं त्यागमूलक है और वकौल श्रद्धेय राजेन्द्र बाबू यहाँ ताज पर सदा लंगोटी को ही गौरव मिला है। जब तक संसार में कहीं भी अन्याय और अत्याचार रहेगा तब तक ‘बसुधैव कुटुम्बकम्’ की नीति का अनुसरण करनेवाली इस पुण्यभूमि में शहीदों का विक्रम हरगिज हरगिज कम न होगा। उनकी परम्परा निरन्तर कायम ही रहेगी।

और, अभी तो इस भूमि में ही बहुत काम करने को पड़ा हुआ है। हमारा मुल्क अभी आजाद हुआ है, उसे आजाद करना है, गो इस समय वह उल्टा बरबाद हो रहा है। और यह आजादी भी अभी अल्पसंख्यक साधन-सम्पन्न व्यक्तियों को ही मिली है, मध्यम श्रेणी के कुछ लोगों तक ही उसका आनन्द पहुँचा है। साधारण जनता तो अब भी अज्ञानान्धकार में भटक रही है। दरअसल अभी हमारे राष्ट्र के पुनर्जीवन के प्रथम अध्याय का ही प्रारम्भ हुआ है। द्वितीय अध्याय तब शुरू होगा

जब कि टूंडे चमार, सूर धीमर, पलटू खँगार और हलके अहीर की सन्तानों को शिक्षा, संस्कृति तथा आत्म-विकास के वे सब साधन सुलभ होंगे, जो आज केवल सर्वश्री वृन्दानवलाल वर्मा और रमाशंकर शुक्ल, ठाकुर सज्जन सिंह और बनारसीदास चतुर्वेदी की सन्तानों को प्राप्य हैं। अभी वह दिन बहुत दूर है। खासतौर पर इस पिछड़े हुए प्रान्त बुन्देलखण्ड में तो वह काले कोसों दूर प्रतीत होता है। उस दिन को निकट लाने के पुण्यकार्य में कवि लोग विशेष रूप से सहायक हो सकते हैं। भूरे शासकों के चरण-चुम्बक भाट बनने के बजाय उन्हें शोषित जनता के योद्धाओं के चरण बनना है। काव्य-रचना अपेक्षाकृत बहुत आसान है, पर उसके भावों को अपने जीवन में चरितार्थ करना बहुत मुश्किल।

शीलजी कहते हैं—

“सिंहासन पर अस्थिराँ रहें, शासक अब कोई व्यक्ति न हो।”

और हमने भी बहुत दिन पहले चाय के नशे पत्ते में लिख मारा था :

“शासन के दुरमन बने, करें निज शासन
सिंहत्व चाहिये हमें, नहीं सिंहासन।”

पर हम राज्याश्रय में अराजकवाद का दम भरते रहे हैं (या दम्भ करते रहे हैं ?) और शीलजी कन्ट्रोल के कपड़ों की दूकान पर समय का सदुपयोग ! कितना कठिन है अपने सिद्धान्तों के अनुरूप निजी जीवन बनाना ! स्वाधीनता के प्रत्येक उपासक के लिये उन्मुक्त आकाश तथा अबाध अवकाश कितना जरूरी है इसका अनुभव हमें पग-पग पर हो रहा है।

पर शीलजी अभी कुल जमा पच्चीस वर्ष के ही हैं और उनके विषय में हम निराश नहीं, उनके वर्तमान ग्रन्थ और उसके पीछे जो सद्भावना है, उसे दस पन्द्रह वर्ष बाद भुनाई जानेवाली हुण्डी के रूप में ही मानते हैं। वे ‘वालिद्वीप का बलिदान’ नामक एक महाकाव्य भी लिखना चाहते हैं और अपने जीवन के कई वर्ष उसकी तैयारी में लगा देने के लिये उत्सुक हैं। शीलजी के काव्य में प्रतिभा है, व्यक्तित्व में आकर्षण और हृदय में स्वाभिमान [और स्वभाव में प्रमाद ?] और यदि वे अपने ध्येय के प्रति सजग रहे तथा अप्रमाद द्वारा निरन्तर उस ओर बढ़ते रहे तो आगे चलकर वे निस्सन्देह एक प्रभावशाली कवि ही नहीं बन जायेंगे, वरन् भावी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में हाथ भी बँटा सकेंगे।

दरअसल काव्य-रचना की अपेक्षा अपने जीवन को काव्य बनाना कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। वक्रौल अकवर,

मैं अपने आप में इन शायरों में फर्क करता हूँ।
सखुन इनसे सँवरता है, सखुन से मैं सँवरता हूँ।

इस शुभ अवसर पर जब कि शील जी की प्रथम मानस-सन्तान साहित्यक्षेत्र में अवतीर्ण हो रही है, हम उन्हें एक चीज भेंट करते हैं और वह है प्रातःस्मरणीय शील जी का सन्देश उन्हीं के अक्षरों में—

Do you want the fragrance of the full-blown rose ? If so, you must accept the thorns. Do you want the sweetness of the smiling dawn ? If so, you must live through the dark hours of the night. Do you want the joy of liberty and the solace of freedom ? If so, you must pay the price. And the price of liberty is suffering and sacrifice...

Bombay
31. 12. 31.

Subhas Chandra Bose.

इस भूमि के करोड़ों निवासी उस सन्देश को विधिवत् ग्रहण करें और तदनुसार अपना जीवन निर्माण, यही हमारी आन्तरिक अभिलाषा है।

आम्र निकुञ्ज
कुण्डेश्वर, टीकमगढ़ }
१ जनवरी, १९४८

वनारसीदास चतुर्वेदी



प्यारा सुभाष था देश भक्त
भारत में उसका मान रहे,
हर भारतीय की जिह्वा पर
उसके यश का ही गान रहे।

वन्दना

आज़ाद-फ़ौज की गाथा को
निज हृदय खोल कर लिखता हूँ,
नेता मुभाप को कर प्रणाम
'जय हिन्द' बोलकर लिखता हूँ !

बाणी, साकार स्वयं लक्ष्मी
उसका ही वन्दन करता हूँ,
सेना के जो संचालक थे
सब का अभिनन्दन करता हूँ !



आवश्यकता न कल्पना की
हैं सत्य स्वयं इतना सम्मुख-
वागीश लेखनी भी जितना
लिखने-लिखते थक, जाके रुक !

आज्ञाद फ़ौज की सत्य क्या
कल्पना-ग्रहं से बहुत दूर,
इसके लिखने वाले होते
दिग्गज कवि, तुलसी या कि मूर !

तो संभव था यह घर-घर में
हो ही जाती आदरणीया,
इसके छन्दों की अवली भी
हो ही जाती चिर-स्मरणीया !

अब खद्योतों के द्वारा ही
हो रही प्रकाशित है यह, पर,
आलोक पा सकेगा कुछ भी
जो इसके द्वारा काव्याम्बर !



तो श्रम-साफल्य समझ लूँगा
उर को संतोष मिलेगा कुछ,
आज्ञादी के दीवानों को
इसमें यदि दोष मिलेगा कुछ !

तो जोश भरे अंतर की क्या-
हालत होती है वे समझें,
जोशीली असि या भसि कितनी-
संयत होती है वे समझें !

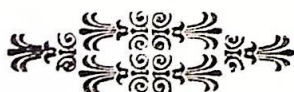
इस काव्य-तड़ाग मध्य कवि तो-
हैं मीन, और कुछ आलोचक,
चुपकी साधे बैठे रहते
हैं बने सौम्य से सम्यक वक्ता ।

कोई कवि-मीन उठा ऊपर
ये चोंच मारते हैं फौरन,
स्वातन्त्र्य कवच से सजा सुदृढ़
यदि हुआ मीन का लोहित तन !

तीन

तो इनका अख न चलता है.
चों-चों, का शख न चलता है.
दड़-मीन तनों से बक-मृदु-वपु
हरगिज न कभी भी पलता है !

“बिन काज दाहिने-बायें” को-
फिर भी करता हूँ नमस्कार,
वार्णी वरदायनि के सम्मुख
नत-शिर होता हूँ शतत बार !



प्रति-क्रिया

आज़ाद फौज़ थी बनी सफल.
निज देश स्वतंत्र कराने को.
जापान-संधि भी की थी तो
अँग्रेज़ी-राज्य हराने को :

पर, भारत में बसने वाले
हैं नहीं 'एक-मत' हो पाते,
मतभेद बढ़ाने की न कभी
वे अपनी आदत खो पाते !

पाँच

आजाद-फौज का यदि विरोध
अंगरेज हुकूमत करती थी,
तो, यह तो स्वाभाविक ही था,
अंगरेजी सत्ता डरती थी ।

नेता सुभाष की छाया में
आजाद-फौज यदि बढ़ी चली,
गोरी पलटन की छाती पर
निज कदम मिलाकर चढ़ी चली ।

तो, साम्राज्य मिट जायेगा
सेन की चिड़िया हाथ नहीं—
रह पायेगी फूटी किस्मत—
दंगी फिर हरगिज साथ नहीं !

पर सरकारी गुट के सिवाय
कुछ भारतीय भी भ्रम में पड़,
नेता सुभाष जी के खिलाफ
कह गये बहुत ऊबड़-खावड़ !



छः

“लेखक, वक्ता, कुछ चित्रकार
ऐसी धारा में बहे खूब,
भावुक कवि तो भावुकता में
विलकुल पूरे ही गये डूब !

“वे भूल गये कर्तव्य स्वयं
क्यों उनको प्रतिभा मिलती है,
वे भूल गये क्यों काव्य कला
विकसित होती है खिलती है ।

“वे भूल गये क्यों कर उनको
कवि होने का सम्मान मिला,
वे भूल गये क्यों कर उनको
हैं वाणी का वरदान मिला ।

“इसलिये नहीं वे निज मद में
हो मत्त कल्पना पर झूलें,
इसलिये नहीं वे सुचिर-सत्य
अपनी भुंभलाहट में झूलें

सात

“हे महा खेद ! कवि साहित्यक,
ये पराधीन इतिहास कार,
नेता जी पर कर देते थे
निज कलम कुठारे का प्रहार ।

“कैई कहता था नेता जी
हैं त्याज्य-पंथ के आरोही,
कैई कहता था प्रिय सुभाष
हो गया आज देश-द्रही ।

“उत्थान-मृतन, दायित्व सभी,
होता इतिहासों पर निर्भर,
सच्चे इतिहासों को काला
कर देते कुछ लेखक कायर ।

“इसलिये लौह-लेखनी आज
हैं काँप रही कर में थर-थर,
भारत न भूल जाये इतना
आज़ाद-फ़ौज का शेर ववर—



प्यारा सुभाष था देश भक्त,
भारत में उसका मान रहे,
हर भारतीय की जिह्वा पर
उसके यश का ही गान रहे।

“अन्यथा” कल्पना से ही तो
प्रतिरोधी हो आता अंतर,
गूँजे प्रतिरोध स्वरूप तभी
विप्लवी-कवि-हृदय के ये स्वर !

सम्भव हैं टूटे शिला-लेख,
स्मृति-स्तूप दीखें खण्डहर,
लेकिन मानव की वाणी पर
वाणी का है साम्राज्य अमर।

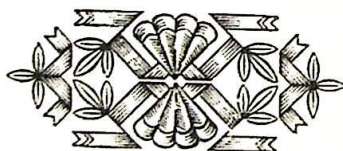
जब तक मानव में जीवन है
मानव-जीवन में काव्य-कला,
देखें फिर कौन मिटाता है
जग से सच्चा इतिहास भला”।



नौ

मेरे अन्तर के कवि को तो
इतना लिख कर सन्तोष हुआ,
है मात्र पारिभाषिक केवल
यदि राजनीति में दोष हुआ

उसको मेरा मष्तिष्क अभी
बतला ही देगा ठीक-ठीक,
इसलिये कि भावुकता न कभी
होती कटु-सत्यों का प्रतीक।



संक्षिप्त-जीवनी

‘थे राजनीति में बोंस कहाँ’
इसकी कीमत जाये आँकी;
‘प्यारे सुभाष के जीवन की
पहिले हम देखें तो भाँकी !

उनमें विलकुल ही बचपन से
साधना-शक्ति थी विद्यमान्,
इतनी, जो बतला सकती थी
यह व्यक्ति कभी होगा महान् !

ग्यारह

जिन दिनों बालकों को प्रायः
हैं चाव सुवस्त्रों का होता,
उन दिनों बस, केवल चदर-
ओढ़े जमीन पर था सोता !

यदि माता कभी प्यार से जा—
प्यारे सुभाष को दुलराती,
ठंडी जमीन पर बालक को—
सोता लख, छाती फट जाती !

अन्तर-पीड़ा को वहीं दबा—
धीरे से कहती थी बेटा—
चल मेरी खटिया पर सो जा,
क्यों शीतल भू पर है लेटा !

उठ कर सुभाष भोलेपन से
माँ की ग्रीवा में हाथ डाल,
मुसकानों के बिखरा प्रमृन
कर देते थे उलटा सवाल !



बारह

क्यों माता, शिव जी सोते हैं
क्या नहीं हिमालय के ऊपर ?
उनकी माँ करतीं नहीं मना,
मैं सोता यदि शीतल भू पर ।

तो क्यों तुमको दुख होता है
मैं भी शंकर का एक अंश,
साधना बनाती श्रेष्ठ सदा
माँ नहीं बनूँगा मैं नृशंस !

ऐसी बातें सुन-सुन कर ही
माता हो जाती थी विह्वल.
मन में सोचा करती अपने,
बालक सुभाष है कुछ पागल ।

‘कण्टाभ्यास’ करने तक ही
पर नहीं साधना सीमित थी.
पर—कण्ट-हरण आकांक्षा भी
अंतर में रही अपरिमित थी ।

तेरह

प्रिय ब्रौस देख पाये थे जब
जीवन में कुल वारह वसंत;
तब उनके निकट-ग्राम में ही
हैजा फैला भीषण दुरंत।

कितने ही घर, नर-हीन हुये
अनुमान रहित नारी-विहीन,
मुन धरती-पुत्र अधीर हुआ
था, पर वह घर में पराधीन।

अन्तर से आ टकराती थी
दिन में रजनी में बार-बार,
अन्तिम श्वाँसें भरने वाले
अगणित असहायों की पुकार।

बालक ने सोचा, माँ से यदि
पूछा तो जान सकूंगा फिर.
क्षण भर के चिन्ता के बादल
बालक के सम्मुख आये घिर।



चौदह

'मैडीकल' छात्र जा रहे थे
उस ओर एक दिन सेवा हित,
सुन कर सुभाष के अंतर में
साहस जागा द्रुतमेव अमित ।

थी काली अमा, घटा वाली,
नभ-पटल, तारकों से खाली,
ऐसा तूफान कि टकराये
तरु से तरु डाली से डाली ।

था अंधकार का ही विकास,
खो चुका अँधेरे में प्रकाश,
था कभी-कभी विद्युत-विहार,
निकला था ऐसे में सुभाष !

पथ भी तो था कण्टकाकीर्ण,
करता था पाँवों को विदीर्ण,
तन ढकने को था साथ लिये-
बालक बस चादर जीर्ण-शीर्ण !



रिमकिम-रिमकिम बरसात रही
आभास शीत का था थोड़ा,
बालक सुभाष ने फौरन ही
चिर-संगिनि चादर को ओढ़ा।

गीली, चिकनी, मिट्टी पर वे
अपन पाँवों को जमा चले,
घन-घटा सहम कर सिमिट गई
नभ में तारों के दीप जले।

झड़ियाँ और झंखाड़ सभी,
आश्चर्य-चकित रह गये खड़े,
आँधी का वेग विलीन हुआ
नत डालें पकड़े वोस बड़े!

चलते चलते आ गया निकट
जब हैंजे से आक्रान्त ग्राम,
तो प्राची नभ की सीमा भी
लालिमा-पूर्ण होकर ललाम-



सुन्दर सा स्वर्ण बिखेर उठी
बालक ने जोड़ स्व-कर लूटा,
बालक-विहीन घर, माता के
था लगा, भाग उसका फूटा !

नयनाश्रु कपोलों से माँ के-
आ गिरे वहीं चिकनी भू पर,
गवि ने मुक्ता कर दिया उन्हें
निज किरन-अँगुरियों से छू कर !

वे भोती और स्वर्ण केवल-
कवि की कल्पना देख पाई,
पर माँ ने लाल न पाया जब
तो उसकी हिलकी भर आई ।

अवसाद छा गया घर भर में,
पर नहीं बोस की छाया भी,
मिल सकी घर, नगर, डगर मध्य,
रह गई मात निरुपाया सी ।

सत्रह

जा पहुँचे उधर सुभाष जहाँ-
हैजे का था पूरा प्रकोप,
उनके अनवरत परिश्रम से
रोगों का होता गया लोप !

उने ग्राम-निवासी पुरुषों ने
बालक से जब परिचय माँगा-
किस लिये कहाँ से आया है
पूरा-पूरा आशय माँगा ।

बालक बोला, जानकी—पुत्र-
मैं ही कहलाता हूँ सुभाष,
आशय है इतना ही मेरा
मैं पीड़ित जन का वनूँ दास !

यह तो तेजस्वी बालक है,
घर-घर में शोर हुआ उस दिन,
है कात्तिकेय अवतार यही
माँ दुर्गा का सुकृपा-भाजन !



अठारह

जब दूर-दूर चर्चा फैली
माता ने भी यह सुना हाल,
तो दुर्गा-मंदिर में पहुंची
पूजा करने को सजा थाल ।

सौ बार आरती देवी की
माता ने की, मन में बोली,
बालक पर निज छाया रखना
है जगदम्बे तेरी ओली !

माँ उर में तभी 'पुकार' उठी
वह शीघ्र लौट कर आयेगा,
बालक सुभाष कुछ ही दिन में
वापस अपने घर आयेगा ।

निज-पद्म प्राप्ति के अगले दिन
नभ में जब सुन्दर-शशि छाया-
फैली तो सहसा, द्वार खोल,
कोई बालक अन्दर आया !



आकर नहीं हथेलियों से
माँ के नयनों को लिया मूँद,
परिचित-स्पर्श से माँ विहँसी
पर शवनम से दो रगम बूँद !

दुलके सुभाष के गालों पर
माता ने उनके आँचल से-
पोंछा, सुभाष को लिपटाया
कस वाँहों में ममता बल से !

द्वितिया का चाँद विहँसता था
ऊपर तारों की टोली में,
उसके समरूप हँसा फिर तो
भू पर माता की ओली में ।



सत्तरह वार थे देख चुके
जीवन में जगमग दीवाली,
फिर भी सुभाष को लगती थी
अपनी भावी-रजनी, काली।

थे चाह रहे बस बोंस यही
उनको प्रकाश का पुञ्ज मिले,
जीवन की सफल साधना हित
अनुभूत शांति का कुञ्ज मिले।

उन दिनों वहीं कलकत्ते में
श्री राम-कृष्ण मिशिनोत्सव था,
कर्मण्य बोंस के लिये तनिक
यह एक मार्ग कुछ अभिनव था !

वे गये वहाँ, थी भीड़ बहुत
नर-नारी-मय कोलाहल में,
खोजने लगे वे चरम-सत्य-
नूतन आँखों से हलचल में।

इक्कीस

संच की ओर को नयन लगे
सहसा, कोलाहल बन्द हुआ,
भाषण करने को सन्यासी-
जब खड़ा शीघ्र सानंद हुआ ।

उसकी बुलन्द आवाज़ वहाँ
मारुत-लहरों से टकरा कर,
प्रतिध्वनित हुई हर-नर-उर में
रह गये अनेकों चकरा कर !

पर, तरुण वोस का ध्यान सभी
भाषण पर केन्द्रित बना रहा,
स्वामी के अन्तिम वाक्यों के
सुनने पर भी वह तना रहा ।

इसलिये कि अपना स्वाभिमान
साधना सलिल से सींचा था,
कर्मण्य वोस को छोड़ वहाँ
बाकी सब का सिर नीचा था !



वाइस

जब कहा सिद्ध-सन्यासी ने
है कौन कि भारत की पुकार,
सुन ले जो उठती युग-युग से
कहती चिल्ला कर बार-बार !

“युवको ! साधना सिखाने को,
चट्टानें शीत हिमालय की,
तुमको सौ बार बुलाती हैं
सुशिलायें शीत शिवालय की !”

सुन, तरुण बोंस की रग-रग में
थम गई रक्त की बूँद-बूँद,
उसने निश्चय कर लिया वहीं
अपने दोनों ही नयन मूँद !

आतप, वर्षा, जाड़े की, अब
बाधा न तनिक वह सोचेगा,
साधना हिमालय पर होगी
वह वहीं सत्य जा खोजेगा !

तेइस

जब गया दूसरी बार पुनः
प्रिय बस हाथ घर के बाहर,
तो पिता जानकी बावू को
लग सकी न कुछ भी खोज-खबर ।

लगती भी कैसे, साधक तो
गिरि-प्रति की दुर्गम राहों में,
चट्टानों पर निज पाँव जमा
जाते थे चले गुफाओं में ।

जो, शीत वर्ष में आच्छादित
उनमें वे आश्रय पाते थे.
साधना शक्ति की चिन्ता में
जग-जग कर रात बिताते थे !

कम्पूरी मृग की नाईं वे
इस तरह भटकते फिरते थे.
जब थक जाते तो वर्षा के
टीलों पर ही जा गिरते थे !



यों एक दिवस आया मन में
है निहित सत्य तो उनमें ही,
'मुझको तो स्वर्ग चाहिये है,
कुछ दिनों फिरे इस धुन में ही।

फिर सहसा यह आया मन में
पथ जग को नया बता दूंगा,
क्यों दुनिया व्यर्थ भटकती है
मैं स्वर्ग धरा पर ला दूंगा।

मेरी कुछ भी आवश्यकता
है यहाँ न हिम-चट्टानों पर,
हा ! कितने जुल्म हो रहे हैं
इन दीन-हीन इन्सानों पर।

इतने ऊँचे से देख रहा, हूँ मैं,
युग नंगा, भूखा है,
हरियाली की छाया में भी
भारत माँ का तन सूखा है।



गंगा-जमुना के पानी से
बुझती है माँ की प्यास नहीं,
रवि की परियों सी किरणों में
मिलता माँ का उल्लास नहीं ।

पश्चिम-योरुप के तटवर्ती
गँदली—लहरों के सागर से,
जो द्वीप घिरा है उसके ही
पैशाचिकता-मय अंतर से-

दानव ने उट कर माता की
झाती पर मारा है घूँसा,
अपनी अशिष्ट वर्चरता से
इसकी आत्मा को है चूसा ।

मुझको जननी ने टेरा है
मुझको युग आज पुकार रहा,
मैं आत्म वंचना करूँ न अब
मुझको मन है धिक्कार रहा ।

इतना कह, तरुण-तपस्वी ने
 हो उच्च शिला पर वहीं खड़े,
 ली विदा हिमालय से तुरन्त,
 जो थे धरती पर अचल, पड़े !

दक्षिण-कर उठा सूर्य-अभिमुख
 अपना मुख कर यह प्रण ठाना,
 मैं स्वयं हिमालय वनूँ मुझे
 बलिदान-शक्ति देते जाना ।

सूरज की किरणों ! आज मुझे
 अब तुम अपनी सी आदत दो,
 ओ अर्द्ध-निशा के तूफानों !
 मुझको विप्लव की ताकत दो ।

इतना कह कर वर-वीर बोंस-
 द्रुतमेव हिमालय से आये,
 सब ने शिक्षा दी अब न कभी-
 फिर बोंस कहीं घर से जाये ।

सत्ताइस

कुछ दिन में नाम लिखा डाला
 'प्रेसीडेंसी' कॉलिज में फिर,
 शायद इससे उनके उर में
 आई थी थोड़ी शांति अचिर !

अपने विद्यार्थी जीवन में
 रहते यों काफी चंचल थे,
 पर भारत-माँ के प्रति उर में
 श्रद्धा वे रखते अविरल थे ।

निज पराधीनता का अनुभव
 उनके प्रति-फल ही होता था,
 इसलिये कभी एकांत देख
 वह तरुण-तपस्वी रोता था !

यदि भूल कहीं कर देता था
 कोई भारत पर व्यंग कभी,
 इस भाँति फड़क से उठते थे
 फिर तो सुभाष के अंग सभी ।

अट्टाइस

सागर की नीरव-लहरों में
मानों तूफान उमड़ आया,
या ज्वाला-मुखों पहाड़ भभक
फटने के हेतु उमड़ आया ।

इसके प्रमाण में घटना भी
अद्भुत है एक विचित्र बड़ी,
उसको न किसी भी कवि ने है
कुछ अतिशयोक्ति के हेतु गड़ी ।

थे एक दिवस निज कक्षा में
प्रोफेसर का भाषण सुनते,
विद्यार्थी-बोस सजग हो कर
प्रति वाक्य हृदय में थे गुनते.

प्रोफेसर ने, था किया जभी
भाषण में, भारत का विरोध,
तो फिर सुभाष के अंतर में
संयत न हो सका, उठा क्रोध ।



भृकुटी चढ़ गई, रोष प्रकटा
अधरो के कंपन के द्वारा,
प्रोफेसर की कनपटी तक
उस पर ऐसा चाँटा मारा !

आँखें तिलमिला गईं उसकी
गारे गुरु का रुँध गया कान,
गुरु-गौर-कपोलों पर उभरा
बालक-कर का खूनी-निशान !

वह हिन्द-विरोधी वहीं गिरा
पर बालक का पढ़ना छूटा,
दो साल बस के व्यर्थ गये
शिक्षालय का आश्रय टूटा ।

पर आशुतोष बाबू ने फिर
कॉलिज में भर्ती किया उन्हें,
इस तरह सुशिक्षित होने का
आगे था अवसर दिया उन्हें ।



मेधावी बालक ने, कुछ ही-
दिन में था बी० ए० पास किया,
निज देश प्रेम की प्रतिभा का
सँग सँग ही खूब विकास किया ।

आगे न चाहते थे पढ़ना
जाकर विदेश में इच्छा से,
पर, पिता जानकी बाबू के
था लोभ उच्चतम शिक्षा से ।

उनकी थी चाह सुभाष शीघ्र
पढ़ कर कोई पद प्राप्त करे.
उनके कुटुम्ब के यश को वह
सीमित समाज में व्याप्त करे ।

आज्ञा-पालन के हेतु गये
पढ़ने विदेश में बस तभी.
अच्छी श्रेणी में पास किया
सादर आई० सी० एस० जभी ।



इकतीस

तो वापस आये भारत में
था सत्याग्रह का जोर बढ़ा,
सरगर्मी वातावरण मध्य
देखी उन पर भी रंग चढ़ा।

थोथी पदवी को फेंका था
सी० आर० दास के द्वारा फिर,
कालिज-राष्ट्रीय खुला था जो
उसके ही थे वे बने स्थविर।

उन दिनों, जालिमों का सुन्दर-
युवराज आ रहा था भारत,
घावों पर नमक छिड़कने का
कहलाता था वह सेवानरत !

मुन कर सुभाष ने फौरन ही
उसके विरोध का काम किया,
नौकरशाही ने उन्हें बन्द-
कर था भर-पूर इनाम दिया।



वत्तीस

छूटे तो फिर स्वराज्य दल के
कामों में वे थे मग्न हुए,
'फावर्ड' पत्र के भी सुफल
संपादन में संलग्न हुये ।

उनकी लेखनी हृदय भीतर
अनुपम अरमान उठाती थी.
उनकी लेखनी विप्लवों का
भीषण नृपान उठाती थी ।

फखतः कायर शासक दल ने
फिर उनको बन्दी कर डाला,
अभियोग चलाये बिना, दूर-
माण्डले जेल में भर डाला ।

जब पुनः छूट आये सुभाष
तो तीस करोड़ प्राणियों ने,
उनका यश गाया एक साथ
था तीस करोड़ वारिण्यों ने ।

तैंतीस

बाहर 'कांग्रेस' की सरगमीं
उननें कुछ ठण्डी सी पाई.
उनको उस समय संधि-चर्चा-
की नीति न थी बिलकुल भाई ।

बस 'सर्वदली' सम्मेलन में-
वे औपनिवेशिक का विरोध-
करने का तत्पर हुये उन्हें
आया 'कांग्रेस' पर बड़ा कोष ।

'लखनऊ' में वे गरजे यह तो
हम सब की अति कायरता है.
जो औपनिवेशिक लें स्वराज्य
तो हम सब की पामरता है ।

फलतः उन्नि सौ उन्नि स में
लाहौर 'कांग्रेस' का अवसर,
था तब निहरू ने प्रण ठाना
निश्चित यह रावी के तट पर ।

‘हम पूर्ण-स्वराज्य चाहते हैं’
भारत ने किया समर्थन था,
निश्चय, सम्मिलित एक स्वर से
छद्म्वीस जनवरी के दिन था।

अगला स्वतंत्रता-दिवस न पर
थे देख सके प्यारे सुभाष.
भारत-निर्वासन मिला उन्हें
था दूर कहीं उनका प्रवास।

वियना, इटली, स्विट्ज़र में वे
आज़ादी-समर लड़े प्रति दिन.
अध्ययन किया जर्मनी और
इटली में है कैसे सुगठन।

पर अधिक दिनों बाहर न रहे
लौटे तो फिर बन्दी-गृह में,
पर कभी निराशा आ न सकी
इस देश-भक्ति-प्रिय निस्प्रह में !



पैंतीस

रक्ता था काफी दिनों कैद
शामक-दल ने इस बार उन्हें,
इस बार देश था चाह रहा
देना उनका अधिकार उन्हें।

गाँधी-विरोध के बावजूद
भी उनसे निज पद ब्रीन लिया,
शेरों की तरह और अपना
वह मुकुट स्वयं ही झीन लिया—

जिसको अपने सर पर रख कर
कहलाये वीर राष्ट्रपति थे,
जिसके कारण सहयोग मिले
उनको लाखों की अभिमति के।

वे तो थे शेर-बजर उनको
हिंसा-विहीन की चाह न थी,
व्रतधारी-वार्पू को भी तो
उनकी कुछ भी परवाह न थी।

छत्तीस

था एक ओर तो जीर्ण-शीर्ण से-
पिंजर-तन में वृद्धापन,
दूसरी ओर तो रग-रग में
बहता था उफनाता यौवन ।

गौंधी, संध्या की नीरवता
थे बोंस प्रलय की दोपहरी,
दोनों के बीच बड़ी खाई
थी पड़ी हुई यह तो गहरी ।

परिणाम हुआ नेता जी ने
अपना सम्मानित पद छोड़ा,
उनको न अहिंसा भाई थी
सो उस मत से नाता तोड़ा ।

फार्वर्ड-ब्लाक को स्थापित कर
उनने अपना संगठन किया,
आगे के कठिन अवसरों पर
जिसने था उनका साथ दिया ।



जब छिड़ा दूसरा महायुद्ध,
तो प्रजातन्त्र का आडंबर-
रचने वालों ने कहा कि है
निज-निर्णय का अधिकार अमर-

‘सब को सब करे’ आत्म-निर्णय ?
यह की सुभाष ने जिज्ञासा,
क्या भारत भी इस निर्णय से
अब प्रकट करे अपनी आशा ।

तो उत्तर में सुभाष को था
चिर-परिचित कारावास मिला,
निज आत्म-शक्ति का उन्हें वहाँ
कुछ निश्चित सा आभास मिला ।

आमरण किया अनशन उनने
आरम्भ, व्यवस्था घबराई,
कर दिया गया द्रुत रिहा उन्हें
शासक-दल ने मुँह की खाई ।



मदमाता यौवन काटा सब
 'नेता' ने नीरव-जेलों में.
 उसने आनंद नहीं पाया
 था 'कभी प्रणय के खेलों में।

मैं ने संक्षिप्त-जीवनी पर
 डाला है थोड़ा सा प्रकाश,
 जिससे है सिद्ध यही होता,
 था उनका 'एकाकी-विकास'।

भारत-हित-चिन्तन करते थे
 वे, पर, केवल अपने मत से,
 हो नहीं सके थे, कभी किसी
 'पार्टी' के सम्मुख आनत वे।

आत्मा-विरुद्ध-अनुशासन में
 रहना आता था उन्हें नहीं,
 अपने मन के विरुद्ध निर्णय
 सहना आता था उन्हें नहीं।



उन्तालीस

था उनका अपना अलग-पन्थ
विद्रोही उनके अनुयायी,
फिर एक निराले विप्लव की
ज्वाला यदि उनसे धधकाई।

तो यह कुछ अद्भुत बात न थी
नादिरशाही के नयनों में-
वदि धूल भोंक कर चले गये
वे आज़ादी के सपनों में।

हा ! भूल अवस्था भारत की
वे निज धुन गुन बैठे मन में.
आ सका न कोई भी आगे
उनके उस समय समर्थन में।

वस राजनीति में असफलता
उनकी भूलकी थी इसी ओर.
जो उनकी एक साधना का
आने न दे सकी अभी झोर।

है खैर अरे यह अन्य बात
जैसे भी इतना काम किया,
उसकी हम उन्हें वधाई दें
भारत का ऊँचा नाम किया।

है खेद मुझे कुछ भारतीय-
कह देते थे मक्कार उन्हें,
है खेद हमारे ही भाई
बतलाते थे गद्दार उन्हें।

यदि, मत-वैषम्य हुआ था तो
इससे क्या आता जाता था,
वह तो भारत की आजादी-
के ही नित गाने गाता था।

मजदूर-मदद-मद में कुछ जन
इस बुरी तरह सें गये भूल,
जो अब निज आँखें मलते हैं
शुभ-आश-चन्द्र पर फेंक धूल।



मैं ने यह सब कुछ कहा सुना
 इसलिये कि मुझको ज्ञात यही,
 जनता-जनार्दन चाहे जो
 माननी पड़ेगी बात वही ।



तुला दान

सिंगापुर में जनता ने जब,
चाहा था निज नेता जी का-
करना अनुपम सा तुला-दान,
मापक रख सोने-चाँदी का ।

तो नेता जी कर सके न थे
नाहीं, अपना मुँह खोल कभी,
यद्यपि न भा सकी थी उनको-
अपनी, सोने से, तोल कभी ।

तैत्तलीस

‘कैसे समझाये जनता को’
नेता जी थे खोये-खोये,
पर्यङ्कापरि पड़ रहे किन्तु
थे नहीं देर तक वे सोये ।

सिंगापुर के नर-नारी तो
हर्षातिरेक से फूले थे,
सोना एकत्रित करने की
धुन में, सब सोना भूले थे ।

कोई न सो सका रजनी में
होना है दिन को तुला-दान,
बन गई रात से ही जनता
दानी, सोने का भूला ध्यान ।

रवि ने भी ‘सोये रहने’ में
देखो; थी आना-कानी की,
घन-घटा-द्रवों में दिखी उन्हें
पर, जब कुछ बूँदें पानी की ।

चवालीस

तो बोले, सुनो चाहता था-
मैं देखूँ अनुपम तुला-दान.
द्रुततर अपने रथ पर चढ़ कर,
पर, देख तुम्हारा यह वितान-

मैं प्रश्न करूँगा अब तुम से
क्यों कर तुमने पथ-रोध किया,
मैं ने न अभी तक था यद्य
तुम पर कुछ भी तो क्रोध किया ।

घन-घटा सहम कर बोली तब-
सागर की लहरों में सोना
मैं चाह रही थी, पर न मिला
ले आई चिर-गरिचित रोना ।

कृपया न कुपित हों आप तनिक-
सोये ही रहें अभी रजनी.
श्रीमान् जगायेंगी आ कर
स्वयमेव तुम्हें ऊषा सजनी ।



पैंतालीस

तात्पर्य यही, सिंगापुर में
जन्ता को यह भ्रम होता था,
होने वाला है अभी प्रात-
इसलिये न कोई सोता था ।

घन-घोर-मेघ-वधुओं को तो
सागर में 'सोना' मिला न था,
सो बारि बिखेर गईं भू पर
अब कौन कुसुम जो खिला न था ।

दिख उठा सभी कुछ हरा-भरा;
देखो ! किसने ली अँगड़ाई.
प्राची में सब से प्रथम उषा-
थी स्वर्ण-थाल लेकर आई ।

ली उसने मुख की साँस आज
सुरभित-समीर थी डोल उठी,
प्रत्येक कमल की कली-कली
सम्पुट-पलकों को खोल उठी ।



थी नई पवन, थी नई सुरभि
था नया हर्ष, था नवोल्लास !
थी नव-शाखें, थे नये-पत्र-
नव-नव सुमन का नव-विकास ।

केवल न प्रकृति ही हुई नई
नव-वालाओं को भी देखो !
उनके वक्षों पर सुमनों की
शुभ-मालाओं को भी देखो !

कैसे नव-शोभन लगते हैं
उनके कानों में रहे झूल,
वे नये-नये सुरभित, सुन्दर-
फूलों फूलों के कर्ण-फूल ।

वे नव-फूलों के शीश-फूल
वे नव-फूलों के काठ-हार,
नव-नव फूलों के बने सभी
आभूषण के जितने प्रकार ।



स्वर्णभूषण तो आज सभी
हैं लिये हुये रूमालों में,
कुछ अक्षत-रोली साथ धरे-
अपने सोने के थालों में ।

सव-नारीं, कुसुम-कुमारीं वन
निज-निज घर से थीं निकल पड़ीं,
कुसुमावलियाँ सँग चलने को
अपनी डालों पर मचल पड़ीं ।

काटों ने कलियों से पूछा
क्या है ? कलियों ने कहा विहँस-
‘भारत माँ-सेवक नेता जी-
का है सुन्दर-शुभ-जन्म-दिवस ।

शुभ जन्म-दिवस नेता जी का
“जय हो” सव के उद्गार उठे,
शुभ जन्म-दिवस नेता जी का
“जय हो” भँवरे गुंजार उठे ।



अड़तालीस

प्रारम्भ हो गया—तुला-दान
थे एक तरफ नेता सुभाष.
उस ओर तुला के पलड़े पर
था सोने का जग-मग प्रकाश !

कर जोड़ नमन कर उठे सभी
बरबस सब के उठ गये हाथ.
अनहोनी को होते देखा
वर सोना और सुवास साथ ।

जनता के पल में नयन खुले-
पलड़ा ऊँचा था एक ओर,
दूसरी ओर नेता जी का-
पलड़ा छूता था भूमि छोर ।

जो कुछ था जिसके पास बचा
सब ने सोना दे दिया और,
पर पलड़ा फिर भी नीचा था
नेता जी का, जब किया गौर ।

उनचास

था गूँज रहा पंडाल सभी
तब इनकलाव के नारों से,
श्री नेता जी चिरजीवी हों
ऐसी ही प्रबल-पुकारों से।

सहसा, सैनिक तब एक उठा
अपने ऊँचे स्वर से बोला,
'पलड़ा अब तक न समान हुआ'
मुन कर प्रत्येक हृदय डोला।

कुछ और जुही की कलियों सी
वालाओं में जागे विचार,
बहुमूल्य, प्रेमियों से पाये—
थे उनमें जो प्रेमोपहार-

मधु-बेला में कम्पित कर से,
वे स्वर्णभूषण चढ़ा दिये,
कुछ ने सुवर्ण की घड़ियों को
ले कर आगे का बढ़ा दिये।



पर पलड़ा हुआ समान नहीं,
चिन्ता जागी जन-जन-मन में,
तब एक ओर को ध्यान गया,
स्वर फूट रहे थे सिसकन में।

उस ओर दृष्टि दौड़ी सबकी
कैप्टिन लक्ष्मी के साथ एक—
नारी आगे को आती थी
तन-मन का सब खोकर विवेक।

वह सिसक-सिसक कर रोती थी
सिर का जूड़ा था खुला हुआ,
उसकी नयनों की प्याली में
अति रक्त-रंग था घुला हुआ।

संकेत दृष्टि से लक्ष्मी से,
बोले सुभाष, क्या बात ? कहो !
मैं सुनने को हूँ व्यग्र बहुत !
अब और अधिक मत मौन रहो।



इकावन

बोलीं लक्ष्मी, कि रणस्थल से
आया है ऐसा समाचार-
इनके पति हुये शहीद वहाँ
इनका संकट है दुर्निवार !

नेता सुभाष ने उसी समय
अपनी टोपी रखली उतार,
वह नारी आगे को आई
आँखों में लेकर अश्रु-धार !

पहले निज कंपित हाथों से
नेता जी को कर नमस्कार,
क्षण भर के लिये अचेतन हो
फिर निज संज्ञा पर कर विचार ।

नारी ने प्रिय-सौभाग्य-चिन्ह
सिंदूर-युक्त निज-शीश-मूल,
रख दिया तुला के पलड़े पर
पलड़ा सहसा कुड़ गया झूल ।

बाबिन

सारी जनता की आँखों में
आँसू के कण छलछला उठे,
सेंदूर के कण चिनगारी बन
विप्लव की ज्वाला जला उठे,

पर। नेता जी का उर-सागर-
था शांत रहा गंभीर-गहन,
बोले तेरी पद-रज के हित
लालायित हैं देवता वहन !

“पलड़े की तरफ दृष्टि डालो
अब भी है पूरा स्वर्ण नहीं”
सैनिक ने कहा गरज कर था
क्या इनमें कोई कर्ण नहीं ?

इतने में एक बहुत वृद्धा
आई ? मुद्रा गम्भीर बड़ी,
थी , एक चित्र चिपकाने वह
निज छाती से, चुप रही खड़ी



तिरेपन

कुछ ही क्षण के पश्चात्, चित्र-
उसने भू पर रख दिया अरे !
था एक उभरता सा चेहरा
फूलों की तरह कोमल भरे !

आँखों में बस आजादी के-
सपनों का सा लग रहा जाल,
ग्रीवा कम्बुक की तरह और
हिम-गिरि जैसा था उच्च भाल ।

ओ नेता जी ! यह इकलौते
मरे बेटे का चित्र इधर,
फिर रुद्ध-कंठ से बोली वह
अपनी आँखों में आँसू भर !

सिंगापुर में अँगरेजों ने
इस महायुद्ध के पहले ही.
इसको शूली पर चढ़ा दिया
इस लिये कि जनता दहले ही ।



होता यदि और कहीं मेरे—
दूसरा कोई सुकुमार-सुमन,
तो भारत-माँ के चरणों पर
करती मैं अर्पित, हर्षित-मन ।

इतना कह कर उस वृद्धा ने
वह चित्र, धरा पर पटक दिया,
शीशा तो गिर कर चूर हुआ
वस 'फ्रेम' हाथ में उठा लिया ।

वह स्वर्ण-फ्रेम उस वृद्धा ने
ज्यों ही जा रक्खा पलड़े पर,
समतल हो गई तुला फिर तो
जय-घोषों से गूँजा अम्बर !

नेता जी द्रुत हो गये खड़े
टूटा उनका इस भाँति मौन,
भारत होगा आजाद नहीं
बोलो कहता है आज कौन ?



एचएन

“मत समझो मैं मानवता के-
लिये शान्ति ही हूँ लाया,
मैं लाया हूँ कान्ति भले ही
नहीं बुझदिलों को भाया ।

मैं आया हूँ मानवता के-
हित जलते अंगार लिये,
मैं आया हूँ मानवता के-
हित नंगी-तलवार लिये !

कौन आज तुम में जो बढ़कर-
नम्र-कटारी चूम सके ?
कौन आज तुममें जो अरि का-
रक्त-पान कर भूम सके ?

कौन आज जो अंगारों पर
क्रदम जमा कर बढ़ा चले ?
कौन आज जो असि-सीढ़ी पर
स्वर्ग-द्वार तक चढ़ा चले ?”



अट्टावन

कहा जिस समय था ईसा ने-
यह तब उनके चारों ओर,
देवदूत-स्वर्गीय, स्वर्ण-पंखों-
में भर कर नई हिलोर-

झिलमिल-झिलमिल हिला उठे थे-
एसी अनुपम वायु वही,
'नभ का स्वर्ग धरा पर आया'
माना यह कल्पना सही ।

पर, उस दिन इतने युग पीछे-
पराधीन नर-प्राणी ने,
खोये हुये गुलाम देश के-
देवदूत की वाणी ने ।

की थी, फिर से वही घोषणा
दो हजार बत्सर पहले-
जो ईसा मसीह ने की थी-
मुन जिसको दिग्गज दहले ।

उनसठ

था रंगून नगर का जुवली-
हॉल, उसाठस भरा हुआ.
जन-जन की रग-रग में-
उस दिन, जाश पुराना हरा हुआ ।

नेता जी भाषण करने को-
जमी मंच पर हुये खड़े,
सचाटा झा गया, सभी के-
नेता जी पर नयन गड़े ।

“नहीं शांति का आज युद्ध का-
मैं संदेश लिये आया.
नहीं संत का. आज वीर का-
मैं वर-वेष लिये आया ।

आज तुम्हारे लिये समर का-
वीर-निमंत्रण लाया हूँ,
आज्ञादी या मौत-मात्र का-
मैं तो प्रिय-प्रण लाया हूँ ।



भारत-माता के अंतर के
घावों को अब धोना है,
नहीं आँसुओं से धुल सकते
व्यर्थ तुम्हारा रोना है।

माता की पूजा करने को-
अपना सिर-प्रसून दे दो,
उसके घावों के धोने को-
अपना गरम खून दे दो।

अपना गरम खून दे कर ही
वनना तुम आशावादी.
अपना गरम खून दे कर ही
पा सकते तुम आज्ञादी।

अब तक तुमने बहुत दिया है-
सब कुछ, निज घर-बार दिये,
चाँदी के दे दिये महल-
औ सोने के अंवार दिये।



दिये धड़कते हृदय, फड़कते बाहु-
अतुल उपहार दिये.
अपना तो सर्वस्व दे दिया-
मानव पर उपकार किये ।

माताओं ने पुत्र और बहनों ने-
भ्राता वार दिये,
नव-विवाहिता बधुओं ने भी-
निज मुहाग-श्रृङ्गार दिये ।

पर इतने से आज्ञादी की-
प्यास नहीं बुझ सकती है,
रण-चंडी की जीम आज-
लोह के लिये तरसती है ।

भेंट स्वयं निज शीश-फूल दो
पागल बनो पुजारी तुम !
तभी विजय के भी बन सकते-
हो निश्चित अधिकारी तुम ।”



बासठ

वक्ता का चर्मोत्कर्ष पर-
स्वर पहुँचा, कुछ स्वेद बहा,
अपनी दहिनी मुठ्ठी कस कर
वज्र-स्वरों में शीघ्र कहा ।

“मैं करता हूँ विजय-घोषणा
तुम निज सिर-प्रसून दे दो,
मैं तुमको आज़ादी दूँगा
तुम तो गरम खून दे दो” !

दिग् दिगंत में गूँज उठी ध्वनि
नभ-तारों से टकरा कर,
श्रोताओं की उर-धड़कन में
उबल उठे नेता के स्वर !

सहसा, किसी एक कोने से
आया एक सम्मिलित नाद,
हम निज रक्त-दान दे देंगे
आज़ादी-‘जय’ ज़िन्दावाद !



तिरेसठ

नेता जी ने उसी ओर को
दृष्टि फेर कर तभी कहा,
केवल बातों की न जरूरत
युवक आज दो रक्त बहा !

लिये प्रतिज्ञा-पत्र खड़ा हूँ
देखूँ कौन बड़े आगे,
इस पर निज हस्ताक्षर कर दे-
तन-मन-धन सब कुछ त्यागे ।

युवक एक पंजाबी द्रुत, कुछ-
जोश भरे स्वर से बोला,
'क्या न रहा विश्वास वचन का'
जो समझ कागज खोला ?

नहीं-नहीं यह बात नहीं है
नेता जी सतेज होकर-
बोले आज नहीं करना है
स्याही से ही हस्ताक्षर !



आजादी के वचन-पत्र पर
आज रक्त से लेख लिखो !
ताकि सदा इतिहास-मंच पर
तुम दीवाने अलग दिखो ।

सब ने एक सम्मिलित स्वर से-
अपनी स्वीकृति दे डाली,
आई एक कुमारी आगे
आजादी की मतवाली ।

कटि से कर में गही 'हाँकिनी' ❀
और तर्जनों को चीरा,
लाल-लाल से बिन्दु गिरे, वह-
वनी रही निश्चल-धीरा ।

आजादी के वचन पत्र पर
किये रक्त से हस्ताक्षर,
सुर-वालाओं ने बरसाये
सुमन-गुलाबी से सत्वर ।

❀बर्मी चाकू

पैंसठ

जग ने समझा था बाला के
रक्त-विन्दु ही बरसे थे,
किन्नरियों के किन्तु यूथ ही
सुमन-वृष्टि कर हरषे थे।

पंजाबी, गुजराती आये
सभों, मराठे, बंगाली,
भू पर रक्त-विन्दुओं से ही
'रेखा' एक बना डाली।

नेता जी ने कहा बीच में
सुन लो मेरी बात ज़रा.
जान लिया है तुम सब ही की
रग-रग में है जोश भरा।

एक जगह तुम आज सभी यह
लोहू एकत्रित कर लो,
एक पात्र में ही सब मिल कर
निज-निज रक्त यहाँ भर लो।

छियासठ

और करो फिर हस्तक्षार तुम-
मेरी यही सलाह, सुनो !
जीवन में बन सके न जिससे-
अलग किसी की राह, सुनो !

नेता का आदेश सभी ने-
श्रद्धा से था मान लिया,
एक पात्र में प्रति योद्धा ने
स्वयं रक्त का दान दिया ।

अति अनुपम आदर्श किसी ने
ऐसा सुना न देखा ही
नई एक इतिहास-पटल पर
वनी रक्त की रेखा सी ।



बहादुरशाह के मकबरे पर

आज़ाद-फौज संगठित हुई—
नेता जी ने ले ली कमान,
अग-जग में पूर्ण प्रसिद्ध हुआ-
प्यारे सुभाष का स्वाभिमान ।

परतन्त्र देश के वासी ने
ले लिया विगुल आज़ादी का,
खिल उठता राष्ट्र साथ देता
तो अभी मुकुल आज़ादी का ।



अइसठ



है नहीं बहादुरशाह आज, सोचा होगा जी आया भर,
पत्थर की छाती पिघल गई, बह गये वहाँ दो क्षण निर्भर ।

संगठन बोस ने था जैसा—
कर लिया हुआ वह अद्वितीय,
उसमें अपनेपन का अनुभव
करता था तब हर भारतीय ।

प्रत्येक मुसलमाँ या हिन्दू
प्रत्येक सिक्ख या ईसाई,
प्रत्येक हुनर का हुनर-मंद
भिश्ती, धोबी, दर्जी, नाई ।

अपने को व्यक्ति समझता था—
अपने को शक्ति समझता था—
आजाद फौज में आवश्यक—
अपनी अनुरक्ति समझता था ।

सेना में कोई रैर न था
हिन्दू-मुस्लिम में वैर न था,
कावा, काशी की अलग-अलग
करता कोई भी सैर न था ।

उन्हत्तर

सब का तीरथ था भारत में
आजादी पाना पुण्य महाँ,
मन्दिर, मस्जिद, गिरजे, द्वारे—
हैं साथ-साथ ही बने जहाँ ।

दुश्मन उनका यदि था कोई
तो वह था अँगरेज़ी शासन,
वे अगर किसी के भूखे थे
तो वह था अँगरेज़ों का तन ।

उनकी प्रतिहिंसा जागी थी
केवल शासन-सत्ता के प्रति,
उनके अंतर में आगी थी
फुलसाने को गोरी-संस्कृति ।

उनका मन्तव्य गुलामी से
अपना पीछा छुड़वाना था,
उनका मतलब भारत माँ की
जंजीरों के तुड़वाना था ।

सत्तर

उनका मन्तव्य जवानों में—
भरसक विद्रोह जगाना था,
उनका मतलब इस भारत में
विप्लव की आग लगाना था ।

इसलिये फौज का हर सैनिक
आजाद तरानें गाता था,
दिल्ली चल दो, दिल्ली चल दो,
ऐसे ही गाने गाता था ।

उठते, खाते. पीते. सोते-
दिल्ली की याद सताती थी,
सपनों में भी प्यारी दिल्ली,
वस अपने पास बुलाती थी ।

वे दिल्ली के दीवाने थे
वस दिल्ली उनको प्यारी थी,
जब देखो दिल्ली चलने की
होती उनकी तैयारी थी ।



उठता है प्रश्न कि दिल्ली तक
आना ऐसा क्या मुश्किल था,
क्या नहीं रास्ता देखा था-
उन सब ने अपनी मंजिल का ।

उनकी मंजिल, पर, साधारण-
जन की नाई आसान न थी,
आना वे चाह रहे थे पर-
यों ही आने में शान न थी ।

वे चाह रहे थे आयें तो
आज़ादी का झन्डा ले कर,
वे चाह रहे थे आयें तो
जयहिन्द-नाद से गूँजें स्वर !

वे चाह रहे थे लाल-किला
उनकी सेना का बने शिविर !
वे चाह रहे थे भारत में
हो भारतीय शासन, सत्वर !

बहत्तर

इसलिये सभी वे सैनिक गए
तन, मन, धन, सारा अर्पण कर,
हो गये प्रतिज्ञा-बद्ध कि हम
विद्रोह करेंगे जीवन भर ।

अँगरेज़ी सत्ता के विरुद्ध—
जिसने हम को परतंत्र किया,
आपस में फूट कराने का
जिसने है हम को मंत्र दिया ।

जा रहे माण्डले थे जब ये
फर-फरा—तिरंगा फहराते,
फौजों के गंगा-जमुना की—
मौजों सा प्रतिपल लहराते ।

रंगून-समाधिस्थित देखा,
था शाह बहादुर, पड़ा हुआ,
अरमान हृदय में था जिसके
लन्दन जीते; वह गड़ा हुआ



तिहत्तर

स्वातंत्र्य-सैन्य के नेता ने
भूकावाहन पहिचान लिया,
आज़ाद हिन्द की सेना ने—
पहिले उस पर ही ध्यान दिया,

मक्कवरा नया कर दिया प्रथम
वनवाया ऐसा शानदार—
जाती थी जिस पर दृष्टि—
फिसल, जमती न जमाते कई बार ।

थे रंग-विरंगे रङ्ग भरे
गुम्बज की संग-तराशी में,
दिखती थी सच्ची शिल्प-कला,
उस भारतीय-नक्काशी में ।

पत्थर पर काम कलम का था
जिस पर आशंका होती थी,
यह भारतीय कारीगर की—
महिमा, या लड़ है मोती की ।

चौहत्तर

द्वारे पर शोभन लगती थी
मुक्ता कैसी माला विखरी,
पत्थर के हाथी दिखते थे
दो साक्षान् दिग्गज प्रहरी ।

ऊँचा झण्डा मुगलों का था
बाहर वाले दरवाजे पर,
आज्ञाद-देश के वैभव को
दिखलाता था जो फहर ! फहर !

उसका उद्घाटन करने के—
सिंगापुर से चल कर आये,
रंगून नगर में नेता जी
आये. सब नारी-नर आये ।

रविवार दिवस था वह उस दिन
छब्बीस सितम्बर थी आई,
आज्ञाद हिन्द की अस्थाई
सरकार वहाँ निज दल लाई ।

पचहत्तर

उस दिन सेना सँग बँड न था
उस दिन मातम का आलम था,
फौजी-जन-बाहों में काली—
पट्टी थी चिन्ह बनी गम का ।

उनका झंडा भी अर्द्ध-नमित
सब के मुख पर था मौन सधा,
गो-धूलि साँझ की बेला थी
प्रायः होती जो वर-प्रदा ।

नीरव था वातावरण वहाँ
कोई बस धूप जलाता था-
मक़बरा हाथ ! गत-वैभव-मय
भारत की याद दिलाता था ।

उस जगह प्रथम बूढ़ा मुस्लिम
आयत पढ़ने को हुआ खड़ा-
हट गया दूसरी ओर शीघ्र
फिर उस समाधि पर फूल चढ़ा ।



द्वियत्तर

नंगे सिर, नंगे पाँव चले-
आये, समाधि के खूब पास,
जाने किन भावों में डूबे
रह गये खड़े, प्यारे सुभाष ।

इक-टक होकर देखते रहे
नेता जी थे पत्थर बन कर,
हाथों के फूल वहीं छूटे
आँखों में आँसू आये भर ।

‘हैं नहीं बहादुरशाह आज’
सोचा होगा, जी आया भर,
पत्थर की छाती पिघल गई
बह गये वहाँ दो क्षण निर्भर !

‘उस करुणा रस की धारा में
सारे सैनिक गण डूब गये,
अस्ताचल को रवि भाग चले
यह दृश्य देखकर ऊब गये ।



सतहत्तर

यदि दिवानाथ कुछ रुक जाते
तो होता उनका तप्त-भाल,
अवनी-तल पर विखराते वे-
अपने अंगारे लाल-लाल ।

नेता जी वीर-बहादुर के-
प्रति, करुणा निज न दिखा पाते
अपने वीरों को वीर-भक्ति का-
पाठ न पूर्ण सिखा पाते ।

अच्छा हो गया दिवाकर ने
अस्ताचल को प्रस्थान किया-
गाने वाले खग-वृन्दों ने
द्रुतमेव वन्द निज गान किया ।

सचाटा विलकुल छाया था
वत्तियाँ धूप की जलती थीं,
अवसाद-पूर्ण सा सौरभ-मय
वे अपना धूम्र उगलती थीं ।



अठहत्तर

एका-एकी उस नेता की
उज्ज्वल सी आँखें चमक उठीं,
एका-एकी उस नेता की
भुज-दंडे दोनों धमक उठीं ।

एका-एकी बोले सुभाष
अपनी दहिनी मुट्ठी कस कर,
ओ ! शाह बहादुर हम बदला
इस बार चुकायेंगे सत्वर ।

इसलिये कि मेरी नस-नस में
खूँ खौला है मक़वरा देख
तेरी समाधि के घावों को
मैं ने पाया है हरा देख ।

तेरी बस एक कामना थी
यह हरा भरा हिन्दोस्तान,
अँगरेजों का न गुलाम बने
चाहे बन जाये बियावान ।



उन्यासी

मैं तेरी वीर-प्रतिज्ञा को
अब पूरा करने आया हूँ
या तेरी तरह पुण्य-भू-हित-
मैं भी अब मरने आया हूँ ।

जीता, तो तेरे अस्थि-फूल
मैं लाल किले में ले जाकर-
आदेश हिन्द को दे दूँगा
इस शाह बहादुर की सुन्दर-

सिंहासन पर अस्थियाँ रहें
शासक अब कोई व्यक्ति न हो,
मानव पर शासन करने को
मानव की वर्चस्व शक्ति न हो ।

फिर नत-मस्तक हो, कर प्रणाम.
चुपचाप चले आये सुभाष
पश्चिम में विलकुल लुप्त हुआ-
उन अरुण-दिवाकर का प्रकाश

अस्सी

नीरव-पद्मी नीड़ों में थे
थे नीड़ पेड़ की डालों पर,
ऊपर श्रम-विन्दु छलक आये
रजनी के नम से गालों पर।

कुछ क्षण में सुधा-सलिल से निशि
मुख घेने के तैय्यार हुई,
पर, दिन भर सूर्य-शौर्य से जो-
प्रति-पल थी उरुकी हार हुई।

सो सुधा-थाल भर कर भी तो
वह अपने मुख को घो न सकी,
श्रम-विन्दु छलक आये थे जो
उनको बिलकुल ही खो न सकी।

सेना-दल को एकत्रित कर-
इतने में, प्रिय सुभाष बोले,
उनकी वाणी की धारा में-
बहते थे आगी के शोले।

इक्यासी

अब इस पवित्र-स्मारक सम्मुख-
निज शपथ पुनः दुहराये हम,
भारत के अन्तिम शाह बहादुर को
निज शीश झुकायें हम ।

जब था स्वतंत्र हिन्दोस्तान
इस वीर-ववर की छाया में,
था बादशाह यह शाह सफल
तब तो मानव की काया में ।

इसकी पुण्य-स्मृति से वीरो !
अपनी रग-रग में जोश भरो,
आजाद करो अब भारत को
माँ स्वतंत्रता का कोष भरो ।

लो सुनो बहादुर शाह वीर की-
कब हमारे सम्मुख है
मरने का अब हमको भय क्या ?
ऐसी सुमृत्यु देती सुख है ।



बयासी

भारत-वासी, बर्मी, मिलकर
इस वर्चस्वता से द्रोह करो,
सारे के सारे भारत में-
अब तो सशस्त्र विद्रोह करो ।

सौ वर्ष व्यतीत हुये लेकिन
अब तक है ताज़ी याद हमें,
किस भाँति बहादुर लड़ता था
करवाने को आज़ाद हमें ।

उसके साथी, मुँह तोड़ दिया-
करते थे अत्याचारों का,
भरसक मुकाबला करते थे
वे तीरों का तलवारों का ।

उनका बलिदान हमारे उर-
भावों को आज जगाता है,
उनका बलिदान हमारे उर-
घावों में आग लगाता है ।



तेरासी

जब शिथिल हुई उसकी सेना,
तब वीर-बहादुरशाह खड़ा-
था हुआ, और उसने अपनी
जानिव से था यह शेर पड़ा ।

“गाज़ियों में बू रहेगी-
जब तलक ईमान की
तेग़ लन्दन पर पड़ेगी-
जा के हिन्दुस्तान की ।”

यह शेर, बहादुरशाह कथित
पढ़ कर सुभाष बाबू बोले.
हैं टैंक हमारे पास और
गन-मैशीनें बम के गोले ।

यह क्रम कह रही है हम से
दुश्मन पर जा पटकते धम से-
गैबी गोले, पीछे का मत
हटना अब तुम अपनी दम से ।



चौरास्ती

यह नहीं लड़ाई घन की है
यह नहीं लड़ाई तन की है,
यह युद्ध आत्मा जीतेगी-
बाजी अवश्य जीवन की है।

जीते तो होंगे ही स्वतंत्र
मरने पर भी होंगे स्वतंत्र,
लेकिन दुश्मन का आज ध्वंस-
करने पर ही होंगे स्वतंत्र।

इस तरह बोस ने जोश-रंग
निज सैन्य-ध्यान पर चढ़ा दिया,
मानों तीखी तलवारों को-
कुछ और शान पर चढ़ा दिया।

सैनिक सब खड़े हुये तन कर
दी गई सलामी दन-दन कर,
वे उमड़-धुमड़ कर चले तभी
मानों रिपु-दल पर घन बन कर।



समर-भूमि में

आजाद-हिन्द सरकार हुई
स्थापित यह जग में शोर हुआ,
उसके उस सैन्य-कोष में धन-
पुद्गलित अगणित कोर हुआ ।



जितने की आवश्यकता थी-
साधारणतः मिल जाता था,
पर उतने की बातें सुन कर-
अरियों का दिल हिल जाता था ।

छियासी

यह श्रेय बोस को ही तो है
सन तैतालिस का जून मास,
वे बना सके ऐसा पावन
पा सकी जो कि सेना विकास ।

शासन की ऐसी सुव्यवस्था
थी, जिस पर हो संतोष बहुत-
अनुभव था नया-नया लेकिन
होते न कभी थे दोष बहुत ।

आज़ाद-हिन्द की सेना के
खेमे गड़ते जिन खेतों में,
आह्लाद-अपूर्व बिखर जाता
निश्चय था उनकी रेतों में ।

सुन्दर से खेमे गड़े सभी
थे घास-फूस से मढ़े सभी,
कृषकों की सी कुटियाँ—उन पर
राष्ट्रीय-तिरंगे चढ़े सभी ।

सत्तासी

लहराते थे नभ-मण्डल में
भारत-स्वतंत्रता के प्रतीक,
चरखे का चित्र सुचित्रित था
जिनके बिलकुल ही बीच ठीक ।

आज़ाद-हिन्द सेना का तो
भोजन भी कृषकों का सा था-
इस रिपु-विनाशिनी सेना का-
जीवन भी कृषकों का सा था ।

उनको विस्कट का ध्यान न था
उनको मक्खन की चाह न थी,
यदि कोई भूखा भी सोता—
तो उसने कुछ परवाह न की ।

नेता जी भरसक वीरों का—
सारा सामान जुटाते थे,
फिर भी सेना की सामग्री
पूरी न कभी कर पाते थे ।



नेता सुभाष जी रात-दिवस-
जी तोड़ परिश्रम करते थे,
भरसक सेना के वीरों की
सारी दुख-पीरें हरते थे ।

सेवा-सुश्रूषा की खातिर,
लक्ष्मी रहती थी साथ-साथ,
स्वयमेव सदा नेता जी का-
होती थी वह दाहिना-हाथ ।

गुण-वर्णनकर्त्ता कवि-उर में-
अवशेष जहाँ तक शंसा हो,
उतनी थोड़ी होगी, जितनी—
लक्ष्मी की आज प्रशंसा हो

कोई उसको दुर्गा कह दे-
या कोई भाँसी की रानी,
कोई मुलताना या रजिया—
वेगम की दे उसको सानी ।

नवासी

पर इतना सब कुछ कहने से—
 उसका सम्मान नहीं होगा,
 राष्ट्रीय-विचारों में डूबे
 कवि का यह गान नहीं होगा ।

वह जो कुछ है सो निरुपमेय
 उपमा तो उसकी पद-रज है,
 उसका कोई उपमान नहीं
 वह उपमानों की सज-धज है ।

कल्पना, कि यह कैप्टिन लक्ष्मी-
 लगती है भाँसी की रानी,
 भाँसी की रानी कह उट्टी-
 भर कर निज आँखों में पानी ।

“अंगरेजों से लड़कर मैं ने
 आजादी-मार्ग प्रशस्त किया,
 नत्थे खाँ से जयचन्दों ने
 उसको था लेकिन ध्वस्त किया ।

नब्बे

मैं कुपित हो चुकी हूँ तब से
मैं खूब रो चुकी हूँ तब से,
जग समझ रहा मैं सोई हूँ
पर, मैं न सो सकी हूँ तब से।

मैं तो जगतीं मैं जगती हूँ
पर कोई जगाने वाला हो
मैं आगी बन कर लगती हूँ
पर कोई लगाने वाला हो।

मैं अमर-क्रान्ति की दूती हूँ
यह लक्ष्मी क्रान्ति-किरण बनकर,
हर-नर को सुखी बनाने को
आई है इस भारत-भू पर।

मेरे स्वरूप को पहिचानो
अंगार-रूप को पहिचानो,
इस लक्ष्मी का सहयोग करो
प्रतिभा अनूप को पहिचानो।



इक्यान्वे

मैं तो अब तक भी झाँसी के-
निज-दुर्ग-द्वार पर रहती हूँ,
अणु-अणु से भी कण-कण से भी-
मैं अपनी गाथा कहती हूँ।

तुम नहीं सभक्त पाते तो क्या ?
तुम नहीं पास आते तो क्या ?
मेरी असि अब भी पैनी है-
तुम नहीं आज्ञाते तो क्या—

इसका भी दोष अरे मेरे-
ऊपर ओ ! लाल धरोगे तुम ?
या शत्रु-रक्त से अब मेरा,
यह सूना भाल भरोगे तुम ?”

कहती है यह लक्ष्मी बाई
झाँसी की रानी रण-वीरा,
कैप्टन लक्ष्मी को तुम समझो
मुझसे भी और अधिक वीरा।

वानबे

कैप्टन-लक्ष्मी की काया में-
 क्यों देख रहे सुलताना को,
 क्या भूल गये इतनी जल्दी
 तुम वह अतीत-अफसाना हो ।

जब मुगलशाह अक्रबर ने निज-
 बेटे को भेजा था रण में,
 "जो अहमद नगर स्वतंत्र रहा,
 उसको गुलाम करने द्वाण में

इतनी भारी सेना लेकर—
 जिसकी गणन न हुई संभव,
 जो उमड़-धुमड़ कर चलती थी
 जिसकी पग-ध्वनि के भीषण-रव-

सुनकर, सुलताना सजग हुई
 थी शक्ति संगठित की उसने,
 जो जो राजे प्रण-बद्ध हुये
 उनकी ही सैन्य-सहित उसने ।



तेरानवे

मुगलों पर धावा बोला था
तोपों के मुँह का खोला था,
तलवार-तराजू के ऊपर
लाखों शेरों को तोला था ।

वह अकबर-पुत्र मुराद कभी
कर पाता पूर्ण मुराद नहीं,
यदि सुलताना का ही वज़ीर-
ना उमको इमदाद नहीं ।

सुलताना हुई शहीद हाय !
परिमाणु अशेष छोड़ अपने,
पर निज-समाधि में देख रही
आज़ादी के अब तक सपने ।

सुलताना बेगम की समाधि
देखो कितनी मूनी लगती,
कल्पना पूँछती शीघ्र वता
तू सोती अब तक या जगती ।



चौरानवे

तो उत्तर की नीरवता में
अनुमान यही लग पाता है,
यह गहन गुलामी-धृष्ट उसे
प्रतिक्षण ही दुख पहुँचाता है।

जब उसको अपने सा प्राणी
इस युग में आज स-देह दिखा,
तो उसने कवि की वाणी को
निज मंत्र आज सस्नेह सिखा।

कहलाया है कि यही लक्ष्मी
है इनकलाव की चिनगारी,
सत्ताशाही के ईधन को-
कर सकती खाक यही नारी !”

आज़ाद फौज के सैनिक गए
यह सोच जांश में भरते थे,
भारत आज़ाद कराने को
रिपु मार, स्वयं भी मरते थे।

पंचानन

नेता जी आगे चलते थे
सारा भय त्यागे चलते थे,
अरियों के सीनों पर गोलीं
दन-दन-दन, दागे चलते थे।

रणवीर अनेक निकलते थे
तोपों से आग उगलते थे,
गोलों की भीषण मारों से
रिपु-दल सब पल में जलते थे।

सारी सेना, लासानी थी,
सागर लहरों के पानी सी-
लहराती बढ़ती जाती थी
उसकी गति तो तूफानी थी।

चलती, तब हिलती थी धरती
सेना बन जाती, शंकर थी,
ताण्डव से धूल उड़ा मानों-
आभा हरती थी अंबर की।



छयानवे

जिस दल के पीछे पड़ जाती
जिस दल के ऊपर बढ़ जाती,
उसको आफत से मढ़ जाती
उसकी छाती पर चढ़ जाती ।

अरियों के छक्के छुटते थे
दिखते थे रिपु, दम-घुटते से,
दुश्मन-दल-प्राण-रतन मानों
वे-मोल वहाँ पर लुटते थे ।

जय हिन्द बोल, वर बढ़े जहाँ
लाशों से भर कर गढ़े वहाँ,
लाशों पर होकर खड़े वहाँ
दुश्मन से जी भर लड़े वहाँ ।

आज़ाद-फौज़ की तोपों की
जिस ओर मार हो जाती थी,
उस ओर क्षितिज की सीमा भी
कुछ धुँआधार हो जाती थी—



सत्तानवे

साकार काल प्रलयंकर सी
उन गैबी-गोलों की मारें,
दावानल सदृश भयंकर सी
उन पवि के शोलों की मारें-

होती थीं अति भीषण-प्रचण्ड
रिपु-दल करती थीं खण्ड-खण्ड-
नभ-मण्डल में कुछ काला सा
होता था उज्ज्वल-मार्तण्ड ।

दिन की लगती थी रात वहाँ
थी आगी की वरसात वहाँ,
आठों प्रहरों वस होता था
पवि का ही उल्कापात वहाँ ।

ऐसा भीषण-रण होता था
ऐसा भीषण-प्रण होता था,
खूनी-आँसू बिखरा-बिखरा-
अरि-भू का कण-कण रोता था ।



अट्टानवे

लोह की वर्षा रहती थी
शोणित की सरिता बहती थी,
आजाद-फौज़ के, अरि-सेना,
प्रतिवार अनेकों सहती थीं ।

जब टैंक धड़-धड़ा उठते थे
जब कैफ़्ट घड़-घड़ा उठते थे,
निज गन मशीन फड़-फड़ कर के
जिस समय फड़-फड़ा उठते थे—

लाशों पर लाशें गिरतीं थीं
प्राणों पर पाशें गिरती थीं,
किंचित उठने से पहले ही
लाखों की श्वासें गिरतीं थीं ।

बत्ती पर बत्ती जलती थीं
गोली पर गोली चलती थी,
उस ओर शत्रुओं की पल में
टोली पर टोली जलती थी ।

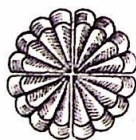


निन्नावे

मुर्दा, भ्रूणों के भ्रूण गिरे
कुछ के पृथ्वी पर रुण्ड गिरे,
कुछ के अम्बर में समा गये
कुछ के धरती पर मुण्ड गिरे ।

गन पर संगीने खिंची हुई
अरि-शोणित से थीं सिंची हुई,
जिस ओर नज़र जाती दिखतीं
लाशों पर लाशें बिछीं हुई ।

मचता था हाहाकार वहाँ
रण चण्डी का था मन चाहा,
काली-माँ की बलि-वेदी पर
होता था यों स्वाहा ! स्वाहा !



वीरों पर आरोप

यह तो वीरों की सेना थी
दुर्भाग्य रहा पर भारत का,
जो समय-पूर्व बलिदानों से
कर सका न इसका स्वागत हा !

फलतः यह सेना हार गई
हो गये वीर-गण गिरफ्तार—
अँगरेजों की यह चाह करें
इनके अपराधों पर विचार ।

एक सौ एक

अंगरेज प्रचारक कहते हैं
सम्राट-विरोधी थी सेना,
मैं कहता हूँ सम्राट कौन ?
सत्ता का हमको क्या देना ?

आजाद फ़ौज पर यह सत्ता—
करती है दोषारोपण क्या ?
आजाद-भावना-धन का भी—
कुछ हो सकता है शोषण क्या ?

उस लाल-किले में पेशी थी
जब साथी नेता ढिल्लन की,
श्री सहगल शाहनवाज उठे
दर्शक भी सुधि भूले तन की ।

तीनों की निधड़क हुंकारें—
गुन कर दीवारें काँप गईं,
उस लाल-किले की ईंटें भी—
वीरों की गुरुता भाँप गईं ।

एक सौ दो

मनमाने सारे के सारे—
सत्ता, कानून लगा डाले,
हिन्दोस्तानियों के मुख पर
पड़ सकते हैं न कभी ताले ।

आजाद फौज के वीरों को
दोगे यदि धमकी फाँसी की,
तो याद तुम्हें करनी होगी—
फिर वही लड़ाई फाँसी की ।

जिसको तुम गदर बताते हो
पल भर में सम्मुख आयेगा,
भारत भू का अणु-अणु कण-कण
खूनी रँग में रँग जायेगा ।

आगाह इसलिये करते हैं
शासक समाज हो सावधान !
भूलाभाई समझाते हैं
अँगरेज-राज हो सावधान !

एक सौ तीन

“ले अन्न छीन, ले वस्त्र छीन
तू बना भले ही हमें दीन,
तीनों वीरों को फाँसी दी
पर मान इन्हें यदि पराधीन—

तो दो हड्डी वाले किसान
ये भारत-माँ के नौजवान,
छेड़ेंगे ऐसा घमासान
कर देंगे दूभर अन्न-पान ।

हैं युवक-वीर ये भाव भरे
द्रुत हो जाते हैं ताव भरे
इनकी माँगों को ठुकरा कर
मत सहला इनके घाव हरे ।

ये तोड़ डालते सौ विधान
ये फोड़ डालते आसमान,
रखने को अपनी आन-बान
वन जाते गोली के निशान ।

एक सौ चार

हो जहाँ दुधप कहीं
छिड़ जाये फिर संघर्ष कहीं
आ जाये न फिर से
सम-सत्तावन की वर्षा कहीं

दिल्ली हमी, यह
जहाँ से आता है
ऊँचा ऊँचा इस चीज़ी पर—
देगा अपने प्राण दान ।

फलतः वे तीनों रिहा हुये
भारत का ऊँचा भाल किये,
उस दिन था विश्व समझ पाया—
भारत में कैसे लाल हुये ।

उस दिन दिल्ली-वाजारों में
उस दिन दिल्ली की गलियों में,
उस दिन दिल्ली के फूलों में
उस दिन दिल्ली की कलियों में ।

एक सौ पाँच

था विलकुल ही उत्साह नया—
 था विलकुल ही उल्लास नया—
 उस दिन दिल्ली में दीख उठे—
 पृथ्वी नवीन, आकाश नया—

उस दिन दिल्ली में नर-नाहर—
 जयहिन्द बोल हुंकार उठे
 उस दिन मन्दिर के घंटे भी—
 जय 'हिन्द ध्वनि' टंकार उठे ।

उस दिन मस्जिद में कहा गया
 जय-हिन्द, पढ़ी पीछे नमाज,
 उस दिन गायक की वीणा पर—
 जय-हिन्द-स्वरों में सजा साज ।

उस दिन तो साक्री हाला भी
 जय-हिन्द बोल कर देता था,
 उस दिन मधुपायी प्याला भी
 जय-हिन्द बोल कर लेता था ।

एक सौ छः

उस दिन हर हर करने वाले
विजया न तौल कर पीते थे,
'शिव-जय' भूले, भर पेट भंग
'जय-हिन्द' बोलकर पीते थे ।

उस दिन तितलियाँ तिरंगीं ही
हर जगह डोलतीं दिखतीं थीं
कलियाँ भी चटखन के स्वर में—
'जय हिन्द' बोलती दिखती थीं ।

उस दिन दिल्ली मतवाली थी
रजनी उस रोज न काली थी,
उस दिन दिल्ली के घर-घर में
जगमग-जगमग दीवाली थी ।

विद्युत-बल्बों की जाली से
नूतन-सौंदर्य-प्रणाली से,
घर-दूकानें थीं सजी हुईं
मंजुल-मंजुल हरियाली से ।

एक सौ सात

फिर जहाँ गये तीनों साथी
यह सारा आलम साथ मिला,
लाहौर नगर में पर इनको
बढ़ता सा कोई हाथ मिला ।

भारी से भारी जन समूह को-
चीर बढ़ी, वह ललना थी,
उसने जो कार्य किया उस दिन
उसकी न कहीं पर तुलना ही ।

आश्चर्य-चकित रह गये सभी
जब उसका दहिना हाथ उठा,
वाँये कर, दातों के द्वारा-
चाकू भी खुलकर साथ उठा ।

चीरा था वहीं अँगूठा-निज
उस वाला ने, वह उठा खून,
लालों का तिलक रक्त से कर-
बिखरा कर भावों के प्रसून—

एक स आठ

वह ललना हाथ जोड़ बोली
 कोई न समझ पाया भाषा,
 गद्गद थी वह, था कंठ रुँधा-
 उसकी थी यह मंगल आशा—

वीरो-! भारत को अब स्वतन्त्र-
 कर दम लोगे; यह प्रण ठानो,
 मैं रक्त-तिलक कर चुकी तुम्हें
 तुम इसको विजय-तिलक मानो ।

बस इतने में ही गूँज उठा-
 दिक्मंडल में वह सिंह-नाद,
 अणु-अणुकण-कणमेंविस्वर-विस्वर
 प्रतिध्वनित हुआ, जय-हिन्द-नाद ।



एक सौ नौ

उप-संहार

इस गाथा के नायक-नेता
हैं कहीं यकायक लुप्त हुये,
हैं खो जाने का शौक उन्हें
इसलिये कहीं हैं गुप्त हुये ।

लेकिन कवि का भावुक मन तो
करता इस पर विश्वास नहीं,
रहते आये व रहेंगे भी-
भारत के वीर-सुभाष यहीं ।

राणा-प्रताप जब जीवित हैं
जीवित हैं वीर-शिवाजी भी,
तब कैसे यह विश्वास करें
जीवित न यहाँ 'नेता जी' ही ।

एक सौ दस

प्रति-पल निराश होने वाले-
अपने उच्छ्वासों को देखो,
ओ क्रूर ! अविश्वासी मानव !
अपने विश्वासों को देखो ।

अपने सँग करना सीखा है
तुमने अब तक विश्वासघात,
तुम लगा रहे अपना हिसाब
बस जोड़ रहे हो पाँच सात ।

यदि चाह रहे पौ-चारह तो-
वाजी पर प्राण लगा डालो,
सोये से शौर्य्य-पराक्रम को
अपने में आज जगा डालो ।

जो कोटि-कोटि कंटों के स्वर,
कहता है कौन उन्हें, मृत हैं;
यह कवि, विश्वास दिलाता है-
नेता-सुभाष जी जीवित हैं ।

एक सौ ग्यारह

जिस दिन नीचे होगी न मही
ऊपर होगा आकाश नहीं,
उस दिन होगा विश्वास मुझे
इस जग में कहीं सुभाष नहीं ।

भारत के बच्चे-बच्चे में
हमको सुभाष का रूप दिखे,
बन्धन करने को छिन्न-भिन्न-
प्रतिभामय-शौर्य अनूप दिखे ।

यह 'रेखा' अभी अधूरी है
कम हो न शहीदों का विक्रम,
बलिदान इसे पूरा कर दें
तब पुनः चलेगी रक्त की कलम !





